॥भगवान् श्री शंकराचार्यो विजयतेतराम्॥

समालोचना

लेखक :–

महामहोपाध्याय—

श्री अनन्तकृष्ण शास्त्री

ॐ

श्रौतमुनिचरितामृत ग्रन्थ विषये प्रकाशितां श्री बालबोधमिश्रादीनां सम्मतिं प्रदर्श्य स्वाशयः प्रकाशनीय इति, हरिद्वारगैः सुहृद्वरै रस्मत्सविधे प्रार्थितम्। सत्यम्, अत्र ग्रन्थे धर्मशास्त्रार्थशास्त्रयोः प्राधान्याप्राधान्य चर्चायां धर्मशास्त्र प्राधान्यमवलम्बनीयं,मूर्तिपूजादिकञ्चा-वश्यकमिति सुष्ठु प्रकाशितमिति महानुपकारः सनातन-धर्मानुयायिनां श्री बालबोधमिश्रादिभिर्यथोक्तं तथा विशेषतोवरीवर्ति, तथापीदमेवात्रालोचनीयम्, संन्या-साश्रमे गोविन्द भगवत्पादादीनां चतुर्थाश्रमित्वादौ संन्या-साश्रमाधिकार प्रयोजकं ब्राह्मण्यं गुणकृतं नतु जन्मकृत-मित्यादौ च विषये या विचार प्रणाली– अनेन ग्रन्थका-रेणावलम्बिता सा किं सनातनधर्मानुयायिनामुपकारा-योऽत' अपकारायेति। वयन्तु पश्यामः पण्डित प्रवर श्री बालबोधमिश्रादयो नेमामपि विचार प्रणालीं शास्त्रसम्मतां सनातन धर्मावलम्बिनामुपकारिकाञ्च मन्यन्ते, इति पूर्व-मेव प्रकाशितस्यास्मदीयाशयस्य किंचिदिव विस्तरो बहूनां

सुहृद्वराणां प्रार्थनानुसारं श्रौतमुनिचरितामृत ग्रन्थ विषये प्रकाश्यते।

मुनि पदार्थोहि ग्रन्थकारस्या:य हृष्ट्या मुख्य उदासीन सम्प्रदायावलम्बित्वमिति प्रथमं श्रौतपदंनामनि वितथम। श्रौताश्रौत भेदेन मुनिभेदस्य लोकवेदाधिकरण न्याय विरोधेनासम्भवात् श्रौत-मुनिपद सङ्गत्यसम्भवः, श्रौतमुनिपदेनोदासीन सम्प्रदायानुसारिणो यदि विवक्ष्यन्ते, तर्हि तन्मते स्पर्शास्पर्श विचाराद्यभावेन चर्मकार प्रभृतीनामपि श्रौतमुनित्वस्य विवक्षणात् श्रौत-मुनि चरितस्यानु सन्धीयमानस्यामृतत्वं वाधितम्, तदेवं श्रौतमुनिचरिता मृतमितिनामैव ग्रन्थस्यास्य स्वरूपव्याक्रियैव पराक्रियेति न्यायेन ग्रन्थस्यास्य सनातन मार्गावलम्बिनामनादरणीयत्वं गमयति।

मुनि पदं हि मौनमक्रियावस्थामादायैव प्रवर्तमान मुदासीनस्य वोधकं नाश्रम विशेषं प्रतिपादयितुमलम्। औदासीन्यावस्था हि निवृत्तिकावस्था नाश्रमविशेषमपेक्षते। काषादिकमप्यत्रैवानुकूलम्, नतु यौगिक कल्पितोदासीन संप्रदायावलम्बित्वे।

उदासीनपदवाच्यः साधु विशेषश्चर्मकार पर्यन्त एव श्रुतिस्मृति प्रतिपादितश्चतुर्थाश्रमीति ग्रन्थकारस्यास्य वादः स्वनिबन्धस्यैव विरुद्धः; यतश्चतुर्थाश्रम विधायकानि-वाक्यानि प्रथम प्रवाहे संगृह्णन्नयंग्रन्थकारः संन्यास-परिव्राज्यादि शब्दैरेवौदासीन्याख्य चतुर्थाश्रमस्य परिचयं प्रदाति, द्वितीय प्रवाहेतु ८० तमे पृष्ठे यति--परिव्राजक-संन्यासयादि पदानां सनत्कुमारादिषूदासीनेषु सात्त्विक निवृति सेवापरेषु प्रवृत्तिर्न केवलमसङ्गता, किन्त्वसंभवि-न्यपीति प्रतिपादयति। नकेवलमेतावत्, किन्तूदासीनशब्द-स्य प्रवृत्ति विचार प्रसङ्गे प्रथमं चतुर्थाश्रम उदासीन सम्प्रदायः, अनन्तरं राजस प्रवृत्तिरूप गृहस्थाश्रम इति बोधय-न्नयं प्रथमाश्रमत्वमौदासीन्यस्य बोधयति, नतु चतुर्थाश्रम त्वमितिकथंवा हंस-परमहंसादीनेव चतुर्थाश्रमि शब्दो न गोचरयति? सति चैवंकथं श्रीगोविन्द भगवत्पादादीना-मपि श्रौत संन्यासित्वे संदेह लेशोऽपि?

ब्राह्मण्यमपि प्रव्रज्याधिकार प्रयोजकं गुणकृतमेव, नतु जन्मकृतमिति बोधयन्नयं कथम्- "उमोवाच-

भगवन् भगनेत्रघ्न काल सूदन शङ्कर! इमेवर्णाश्च त्वारो विहिताः स्व स्वभावतः॥ उताहो क्रियया वर्णास्सं-

भवन्ति महेश्वर ! एवं मे संशय प्रश्न स्तमुच्छेतुं त्वमर्हसि॥
परमेश्वर उवाच—

स्वभावादेव विद्यन्ते चत्वारो ब्राह्मणादय: । एक जात्या सुदुष्प्राप मन्य वर्णत्व मागतम्॥ तच्चकर्म विशेषेण पुनर्जन्मनिजायते ।" इत्यादीनि महाभारतवाक्यानिबाध मानो न पृच्छन आर्यसमाजो ?

उदासीन शब्दोहिन पारिभाषिकं साधुविशेषं प्रतिपादयति, किंत्वसङ्गित्वमात्रम् । अन्यथा— "सनन्दना-दयो येच पूर्वं सृष्टास्तुवेधसा ।

नते लोकेष्वसज्यन्त ह्यु दासीना: पूजास्तुते ॥" इति पद्मपुराण वचने प्रकृत ग्रन्थ समुद्धृते 'पूजास्तुते' इति वाक्यशेषो नकथं वितथ: ? अनेन श्लोकेन यदि सनन्दना-दीनामुदासीन सम्प्रदायानुसारित्वं विवक्षितम्, तर्हि उदा-सीनाहिते, इति खलु वक्तव्यम्, नतु पूजास्तूदासीना इति ततश्चोदासीन शब्दार्थोऽत्रकोशादिसिद्ध एव विवक्ष्यते, नतु पारिभाषिक इति स्पष्टम् । नहि चतुर्थाश्रमिणो याज्ञवल्क्यादयोऽवस्था विशेषे पूजास्वरूपा नोदासीना ?। सति चैवं श्रौतमुनिचरितामृतमेव ग्रन्थकारस्यास्य

स्वाद्दत सम्प्रदायानुसारिणामश्रौतत्वं स्व संप्रदायस्य चतुर्थाश्रमत्वाभावं च गमयति, यतोमन्वादिवाक्य विरुद्ध-मेव स्वीयं मतमुपपादयतीति ग्रन्थस्यास्यानुसरणमुदासीनानामपि वस्तुगत्याऽवान्तर कलहोत्पादनायैव । यतः—

"अन्धस्यैवान्धलग्नस्य विनिपातः पदे पदे ।"

उदासीनतास्वरूपम् हि सात्विक निवृत्ति सेवां गार्हस्थ्यादिकं च राजस प्रवृत्तिरूपं वदन् ग्रन्थकारोऽयं गृहस्थाश्रमिणां स्वसम्प्रदायानुसारिणामुदासीनत्वं प्रतिक्षिपति । न केवल मियदेव, किन्तु त्रैवर्णिकानामेव संन्यासाधिकारमुदासीन संप्रदाय प्रवेश योग्यतां वा प्रथम प्रवाहे वर्णयन् स्वसंप्रदाय गतान् 'जट' इत्यादिनाम्ना प्रसिद्धान् इतरांश्च जातितोऽस्पृश्यान् त्रैवर्णिकातिरिक्तान् कथमेतद्-ग्रन्थद्वारोदासीन सम्प्रदायतो वहिष्करणीयान् न मन्यते ? विश्वसिमः—सत्यमयं स्व प्रशमात्र दृष्ट्यैव ग्रन्थमिमं लिखति स्म, न तु तात्विक दृष्ट्येति सुधोरमिदं मन्यामहे । यत् निर्मल-विरागि-हंस-परमहंसादि सम्प्रदायमिवोदासीनसम्प्रदायाद्दत पद्धति विशेषमपि तृणाय मन्यते इति सत्यं वयं नितरामेव दुःखिताः ।

अन्तत, इदमेव पृच्छयते-यत् त्रैवर्णिकानामेवोदासीन सम्प्रदायानुसरणं साम्प्रतमितिभवदीये मते भवदीया जट् इत्यादि नाम्ना प्रसिद्धा अन्येच बहव उदासीनाः कुत्रवा पातयिष्यन्ते ? यदिग्रन्थोयं प्रमाणमित्युदासीना अपि मन्यन्त इत्युदासीना एव विचारयन्तु ।

स्थालीपुलाक न्यायेनेदमिदानीं 'समालोचितम्, अधिकन्तु सत्यवसरे पूर्वापर विरोधादि शतदूषणी विवेचनपूर्वक कालान्तरे समालोचयिष्यते । इति ।

(१) महामहोपाध्यायानन्तकृष्ण शास्त्री ।

(२) सम्मतिरत्र चन्द्रभानु शर्मणः शास्त्रालंकारादि विरुदाङ्कितस्य ।

(३) सम्मतिरत्र पं० गोविन्दराम शर्मणः श्री भोलाश्रम प्रधानाध्यापकस्य ।

(४) सम्मनुते द्रव्येश झा व्याकरण-वेदान्ताचार्यः सर्वदर्शन सूरिः योगाश्रम प्रधानाध्यापकः । गुरुवर-श्री बालबोधमिश्रपादा मां प्रत्युक्तवन्तः, यत् बहुतर विषयेषु पुस्तकमिदं (श्रौत०)

सनातन धर्मावलम्बिनामुपकारमावहतीति हठाग्रहेण लिखितम् नतुसर्वात्मना (पुस्तकमिदं) समादरणीयम्। वस्तुतस्ताटस्थ्ये एव मे सम्मतिः कलहभयात् इति।

(५) सम्मनुत एतल्लीलाधरः ऋषिकुलाचार्यः (हरिद्वार)

(६) विषयमिमं सर्वात्मना सम्मनुते योगीन्द्र शर्मा वेदव्याकरणाचार्यः, ऋषिकुल कर्मकाण्डाध्यापकः।

(७) हरिवंशदत्त मिश्रो व्याकरणाचार्यः। ऋषिकुलस्याध्यापकः

(८) सम्मनुते श्री रामानन्द शर्मा व्याकरणाचार्यः।

(९) व्यवस्थामिमां समोचीनां मन्यते कृष्णलाल शर्मा, मीमांसा काव्यतीर्थः, ऋषिकुलाध्यापकः।

(१०) सम्मनुते देवदत्त शर्मेमांव्यवस्थाम्, ऋषिकुलाध्यापकः

(११) सम्मनुते रामदत्त शर्मा ।

(१२) यद्यपि श्रौतमुनि चरितामृत प्रबन्धः स्वरूपतो-ऽर्थतश्च यत्र तत्र अशुद्धार्थ प्रतिपादकत्वेनास्म-त्सम्मतौ अनादेयत्वेन परस्परं कलहोत्थाप-कत्वेन सनातनधर्मिणामपि धर्मस्यक्लेशजन-कत्वेन सर्वत्र प्रसिद्धएव तथापि अस्य कुत्रचि-द्र्थस्यप्रसिद्धस्यापि अन्यथाकारितया गृहस्था-श्रमादि वर्गस्य धर्मध्वंसकत्वेन प्रत्याख्येयत्वम्-उपरिष्टात् महामहोपाध्यायै रनन्तकृष्णशास्त्रि-भिः समालोचितस्य स्वसम्मतत्वं प्रमाणयति,

व्याकरणाचार्य पं० उमादत्त शर्मा

श्रीसेठ रायबहादुर भगवानदास बागला

सं० विद्यालय हरिद्वार ।

'श्रौतमुनिचरितामृत' नामक ग्रन्थ के विषय में अयोध्या में दिखलाई गई (काशी में छपी) पं० श्रीबालबोधमिश्रादिकों की सम्मति को दिखला कर, 'शास्त्री जी! उक्त ग्रन्थ के विषय में आप अपना अभिप्राय (मत) प्रकाशित कीजिये कि यह ग्रन्थ कैसा है।' ऐसा मेरे समीप हरिद्वार निवासी मित्रवरों ने निवेदन किया है। यह सत्य है। इस ग्रन्थ में धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र की प्रधानता-अप्रधानता की चर्चा में धर्मशास्त्र की प्रधानता माननी चाहिये। मूर्ति पूजा आदिक आवश्यक है इत्यादि बहुत अच्छा प्रकाशित किया है। इस प्रकार से सनातन धर्मियों का बड़ा उपकार है यह पं० बालबोधमिश्रादिकों ने जैसा कहा है, वह वैसा ही है। परन्तु यहां यह विचार करना चाहिये कि—'संन्यास—आश्रम के विषय में, श्री गोविन्द भगवत्पादाचार्यादिकों के चतुर्थाश्रमित्वादि के विषय में, और संन्यास - आश्रम के अधिकार का कारण ब्राह्मणत्व गुणकृत है अर्थात् गुण से ब्राह्मण होता है,

जन्म से नहीं, इत्यादि विषय में जो रीति इस ग्रन्थकार (श्रौत मुनि चरितामृतकार-गङ्गेश्वरानन्द) नेग्रहण की है वह सनातन धर्मियों का उपकार करने वाली है या अपकार। हम तो यह समझते हैं कि पंडित बालबोधमिश्र आदिक इस पूर्वोक्त विचार प्रणाली को भी शास्त्रसम्मत तथा सनातन धर्मावलम्बियों की उपकार करने वाली नहीं मानते हैं। हमने अपना अभिप्राय पहिले ही प्रकाशित कर दिया था; परन्तु बहुत से मित्रों के कथन के अनुसार 'श्रौतमुनिचरितामृत' नामक ग्रन्थ के विषय में कुछ विस्तार पूर्वक अब हम अपना मत प्रकाशित करते हैं। उक्त ग्रन्थकार (गङ्गेश्वरानन्द) के मत से मुनिपद का अर्थ है, उदासीन सम्प्रदायावलम्बी (उदासी साधु) इस कारण से 'श्रौतमुनिचरितामृत' इस ग्रन्थ के नाम में 'श्रौत' इस पद का देना ही ठीक नहींहै। क्यों कि मीमांसा शास्त्र में सुप्रसिद्ध 'लोकवेदाधिकरण, में कही हुई रीति के अनुसार श्रौत अश्रौत भेद से मुनि दो प्रकार के होते हैं, यह भी नहीं कह सकते। इस कारण से श्रौत मुनि पद की परस्पर सङ्गति (सम्बन्ध) ही असम्भव है। (मुनि तो श्रौत ही होते हैं फिर मुनि के

साथ श्रौत पद का जोड़ना-अर्थात 'श्रौत मुनि' ऐसा कहना व्यर्थ विशेषणत्वात् असम्बद्ध ही है, ग्रन्थकार को ग्रन्थ का नाम ही रखना नहीं आया इसको स्पष्टरूप से सूचित करता है) यदि 'श्रौतमुनि' इस पद से उदासी सम्प्रदाय के साधु कहना चाहते हो, तो उदासियों में स्पर्शास्पर्श (छूआछूत आदि) के विचार न होने से चमार भङ्गी डोम आदि भी 'श्रौतमुनि कहलाने चाहिये। फिर तो प्रकृत में समालोचनीय श्रौमुनिचरितामृत ग्रन्थ में अमृतत्व बाधित हो गया, (सनातन धर्मियों के लिये यह महा विष होगया वर्णाश्रम की मर्यादा का उच्छेद करने वाला होने से)। इस प्रकार से इस ग्रन्थ का 'श्रौतमुनिचरितामृत' यह नाम ही इस बात को सूचित करता है कि 'स्वरूपव्या क्रियैवपराक्रिया इस न्याय (स्वरूप की व्याख्या करने से ही खण्डन हो जाता है)

इस कहावत के अनुसार यह ग्रंथ सनातन धर्मावलम्बियों के आदर योग्य नहो है,। अक्रियावस्था-रूप (असङ्गित्व विरक्तत्व तटस्थत्व स्वरूप) मौन अर्थ को लेकर ही प्रवृत्त (प्रयुक्त) हुआ 'मुनि' पद 'उदासीन' का

बोधक है, मुनि पद का सम्प्रदाय विशेष (उदासो साधु) अर्थ नहो हो सकता। उदासोनतावस्था निवृत्तिक अवस्था कहलाती है किसी आश्रम विशेष की अपेक्षा नहीं है (उदासोन शब्द का सम्प्रदाय विशेष उदासीन साधु अर्थ नहीं हो सकता।)

अमरकोष आदिकों में भी उदासीन शब्द का अर्थ ऐसा ही लिखा है, मनघडन्त यौगिक उदासोन सम्प्रदायावलम्बी अर्थ नहीं लिखा है। उदासोन शब्द का अर्थ भङ्गी चमार (चाथे पाड़े) आदि तक साधु श्रुति स्मृति पूतिपादित चतुर्थाश्रमो है, यह ग्रन्थकार (गङ्गेश्वरानन्द) का कथन अपने हो ग्रन्थ से विरुद्ध है। क्यों कि चतुर्थाश्रम के विधान करने वाले वाक्यों का (श्रौतमुनिचरितामृत के) पूथम प्रवाह में संगूह करता हुआ यह (गङ्गेश्वरानन्द) 'संन्यास और परिव्राज्य आदि शब्दों से ही उदास नामक चतुर्थाश्रम का परिचय देता है। (श्रौतमुनिचरितामृत के) दूसरे पूवाह के ८० पृष्ठ में तो यति, परिव्राजक और संन्यासी आदि पदों की सा-

त्विक निवृत्ति सेवा परायण सनत्कुमारादि उदासियों में में प्रवृत्ति (प्रयोग) केवल असङ्गत ही नहीं है।

किंतु असम्भव भी है, ऐसा प्रतिपादन करता है। केवल इतना ही नहीं किंतु उदासीन शब्द के अर्थ और प्रयोग विचार के प्रसङ्ग में पहिले चतुर्थाश्रम उदासीन सम्प्रदाय है, बाद में राजस प्रवृत्ति रूप गृहस्थाश्रम है, ऐसा बोधन करता हुआ यह ग्रंथकार (गङ्गेश्वरानन्द) उदास को प्रथमाश्रम है, ऐसा बोधन करता हुआ यह ग्रंथकार [गङ्गेश्वरानन्द] उदास को प्रथमाश्रम बतलाता है; चतुर्थाश्रम नहीं बतलाता। जब ऐसा मानता है तो क्यों नहीं हंस परमहंसादिकों को चतुर्थाश्रमी शब्द कहता है ? ऐसा होने पर श्रीगोविन्द भगवत्पादाचार्य आदिकों के श्रौतसंन्यासी होने में जरासा भी सन्देह कैसे हो सकता है ?

संन्यास के अधिकार का कारण ब्राह्मणत्व [ब्राह्मण जाती] भी गुण से होता है जन्म से नहीं [यह ग्रन्थकार गङ्गानन्द जन्मना ब्राह्मणादि जाति नही मानता

किंतु गुणकर्म से जाति मानता है] यह बतलाता हुआ यह [गङ्गेश्वरानन्द] 'भगवन्' इत्यादि महाभारत के वचनों का खण्डन करता हुआ छिपा हुआ आर्यसमाजी क्यों नही है ? (अर्थात् गुण कर्म से जाति मानने वाला गङ्गेश्वरानन्द आर्यसमाजी है) [पार्वती भगवान् शङ्कर से पूछती है कि हे शङ्कर जी ! चारवर्ण [जाती] गुण कर्म से मानने चाहिए या जन्म से, शङ्कर जी कहते हैं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जाती जन्म से ही होती है गुण कर्म सेनहीं यही सिद्धान्त ठीक है यह उक्त श्लोकों का भाव है, इस महाभारत वचन से जन्म से जाती मानी गई है, गङ्गेश्वरानन्द इससे विरूद्ध कहता है अतः आर्यसमाजी है यह कथन का भाव है]

उदासीन शब्द कामनघडन्त उदासी साधु अर्थ नहीं है किंतु असङ्ग अर्थ है, अन्यथा "सनन्दनादयो येच पूर्वं सृष्टास्तुवेधसा, नते लोकेष्वसज्यन्त ह्युदासीनाः प्रजासुते" यह जो पद्म पुराण का श्लोक श्रीतमुनिचरितामृत गूंथ में उद्धृत किया है उस श्लोक में 'प्रजासु ते' यह वाक्य असङ्गत हो जायेगा, यदि इस श्लोक से सनन्दन आदि उदासी सम्प्रदायानुयायी [उदासी साधु]हैं यह कहना

चाहते हो तो 'उदासीना हि ते' ऐसा कहना चाहिए न कि 'प्रजासूदासीनाः' ऐसा कहना चाहिए, इस कारण से उदासी शब्द का अर्थ कोष आदि में बतलाया [असङ्गत तटस्थ आदि] ही ठीक सिद्ध होता है मनघडन्त उदासी साधु अर्थ अप्रामाणिक है यह स्पष्ट ही है। अवस्था विशेष में प्रजा में राग-प्रेम न करने वाले याज्ञवल्क्य आदिक उदासीन [असङ्ग-विरक्त] हैं। जब ऐसा है तो श्रौत-मुनिचरितामृत, ही गङ्गेश्वरानन्द तथा उसकी सम्प्रदाय के सब उदासियों को अश्रौत (अवैदिक] बतलाता है, एवम् अपने उदास सम्प्रदाय को अचतुर्थाश्रमी सिद्ध करता है, क्यों कि गङ्गेश्वरानन्द मनु आदि के वाक्यों के विरुद्ध हो अपना मत सिद्ध करता है इस कारण उदासियों को भी इस ग्रन्थ का अनुसरण नही करना चाहिये, वस्तुतः यह ग्रन्थ परस्पर में भ्रातरी कलह पैदा करने के लिये ही बनाया गया है, अंधे के पीछे लगे हुए अँधे का भी पग पग में पतन अवश्य ही होता है। सात्त्विक निवृत्ति सेवा उदास है राजस प्रवृत्ति गृहस्थत्व है ऐसा कहता हुआ गङ्गेश्वरानन्द गृहस्थी उदासी साधुओं को उदासी नहीं मानता, केवल इतना नहीं त्रैवर्णिक

को संन्यास का अधिकार है और उदासी सम्प्रदाय में प्रवेश होने की योग्यता है इस प्रकार प्रथम प्रवाह में वर्णन करने वाला गङ्गेश्वरानन्द अपने उदासी सम्प्रदाय में आये हुए [उदासी साधु बने हुए] जट तथा अन्य अस्पृश्य [अछूत] अत्रैवर्णिकों को अपने इस श्रौतमुनिचरितामृत गूंथ द्वारा उदासी सम्प्रदाय से वहिष्कार [निकाल] करने योग्य क्यों नहीं मानते हैं (तुमारे गूंथ के अनुसार उनका वहिष्कार होना चाहिये । [इस से स्पष्ट सिद्ध हो गया कि यह [गङ्गानन्द ने] केवल अपनी बुद्धि से ही [शास्त्र दृष्टि द्वारा नहीं] इस पुस्तक को लिखा है । शास्त्रीय तात्त्विक दृष्टि से नहीं लिखा है यह हम खूब अच्छी तरह से जानते हैं, क्योंकि निर्मले वैरागी हंस परमहंस आदि सम्प्रदाय की जैसी निन्दा करता हुआ अनादर करता है तैसे ही पूर्वोक्त रीति से उदासी सम्प्रदाय का भी अनादर करता है इस अयोग्य व्यवहार से हम अत्यन्त दुखी हैं। अन्त में हम यह पूछते हैं कि आप के ग्रन्थ में कहे हुए के अनुसार तो उदासी सम्प्रदाय में त्रैवर्णिक ही होते हैं तब आप के मत में आये हुए (उदासी बने हुए) अनेक जट तथा अनेक भंगी चमारों (चौथे पौड़े वालों)

को किस में अन्तर्भाव करोगे [व भी तो उदासी ही हैं], यदि इस ग्रन्थ को उदासीन प्रमाण मानते हैं तो उदासीनों को ही विचार करना चाहिए । स्थाली पुलाक न्याय [जैसे बटलोई के एक चावल के देखने से ही बाकी चावलों का कच्चा-पक्का बना जाना जासकता है इस प्रकार] से इसकी अब इतनी ही आलोचना की है, अधिक समालोचना तो कभी अवसर आने पर पूर्वापर विरोध [आगे पीछे परस्पर विरुद्ध] आदि अनन्त दोष पदर्शन पूर्वक अन्य समय में की जावेगी ।

२ इसमें मेरी भी सम्मति है। पं० चन्द्रभानु शर्मा शास्त्रालङ्कारादि पदवीक ।

३ मेरी भी सम्मति है । पं० गोविन्दराम शर्मा, पूधानाध्यापक. भोलाश्रम ।

४ इसका मैं भी समर्थन करता हूं । पं० द्रव्येश झा, व्याकरण वेदान्ताचार्य सर्वदर्शन सूरि, पूधानाध्यापक श्री ग्रोगाश्रम । [गुरुवर श्री बालबोध मिश्र जी ने मुझसे

कहा है कि 'उदासियों के पक्ष में दी गई सम्मति में मैंने वस्तुत विषय में यह ग्रन्थ सनातन धर्मियों का उपकारक है ऐसा लिखा है।' यह भी उदासियों के हठाग्रह से, न कि यहग्रन्थ सम्पूर्णरूप से आदरणीय है [अर्थात् दोषसहित है,] मैं झगड़ा के डर से अलग रहना चाहता हूं]

५ इस 'महामहोपाध्याय जी को' सम्मति का मैं भी मानता हूं। पं० लीलाधर जी, प्रिंसिपल ऋषिकुलहरिद्वार

६ इस विषय को मैं सम्पूर्ण रूप से मानता हूं। पं० योगीन्द्र शर्मा, वेद व्याकरणाचार्य, ऋषिकुल कर्मकाण्डाध्यापक।

७ पं० हरिवंशदत्त मिश्र व्याकरणाचार्य ऋषिकुलाध्यापक।

८ मैं भी मानता हूं। पं० श्रीरामानन्द व्याकरणाचार्य।

९. इस व्यवस्था 'समीक्षा' को मैं भी सुन्दर मानता हू। पं० कृष्णलाल शर्मा, मीमांसाकाव्यतीर्थ, ऋषिकुलाध्यापक

१०, मैं भी मानता हूँ। पं० देवदत्त शर्मा, ऋषि-कुलाध्यापक।

११, पं० रामदत्त शर्मा।

१२, यद्यपि श्रौतमुनिचरितामृत ग्रंथ नानाविध दोषों से प्रसिद्ध है। फिर भी प्रसिद्ध अर्थ का विपरीत अर्थ करने के तथा गृहस्थाश्रम के धर्म का विध्वंसक होने के कारण त्याज्य है।

महामहोपाध्यायादि श्री अनन्तकृष्ण शास्त्री जी द्वारा ऊपर लिखी गई समालोचना में मेरी भी सम्मति है।

व्याकरणाचार्य पं० उमादत्त शर्मा प्रधानाध्यापक श्री सेठ रायबहादुर भगवानदास बागला सं० विद्यालय हरिद्वार।